International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 03(II), July - September, 2024, pp. 127-137

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में राज्य के कार्य एवं सीमाएंः सोमदेव सूरी के चिन्तन में

डॉ. परमानन्द शर्मा*

प्रस्तावना

वैदिक एवं श्रमण परंपराओं के मध्य राजनीतिक मामलों के प्रति दृष्टिकोण की समानता सौमदेव सूरि के लेखन में स्पष्टतः प्रदर्शित होती है। सोमदेव मध्य काल के प्रारंभ में भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चिंतक थे। उनके जीवन के बारे में अधिक ज्ञात नहीं है। इनके बारे में यह ज्ञात है कि वे एक जैन संत एवं वृहद् साहित्यिक रचना यशस्तिलक के लेखक थे। उनकी राजनीति विज्ञान पर प्रसिद्ध पुस्तक का नाम नीतिवाक्यामृतम् था जो सन् 992 ई. में यशस्तिलक चंपू से अठारह वर्ष पूर्व लिखी गई थी।[1] प्राचीन भारतीय राजशास्त्र के साहित्य में नीति वाक्यामृत का महत्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह ग्रन्थ इतना प्रभावित है कि विचारक इसकी मौलिकता पर सन्देह करते है।[2] उनके राजनीतिक विचार इस तथ्य से अभिप्राणित हैं कि वे प्रत्यक्षतः जीवन से संबद्ध हैं। पुस्तक राजाओं, विशेषकर अरिकेसरी को यह सलाह देने के लिए लिखी गई थी कि राज्य पर श्रेष्ठतम शासन कैसे किया जाए। उसके विचार कौटिल्य तक के भारत में राजनीतिक चिन्तन की परंपरा से संबद्ध हैं। मैं कौटिल्य का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं क्योंकि वे एक प्रकार से धर्मशास्त्र की प्राचीन परंपरा से विचलन का बिंदु थे। यहां राजनीति पर विचार–विमर्श जीवन के नीतिशास्त्र के भाग के रूप में होता था। कौटिल्य ने इसे एक स्वायत्त विषय बनाया, यद्यपि वे ऊपर से नैतिक सिद्धांतों की प्रशंसा करते रहे। उनका सरोकार अच्छाई के विचार से कम और समाज में क्रियान्वयन के लिए ठोस नीतियों का प्रतिपादन करने से अधिक था। सोमदेव के राजनीतिक मामलों पर विचार कौटिल्य से इतने समान हैं कि उनमें भेद करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। वास्तव में, सोमदेव कौटिल्य से तात्त्विक रूप में भिन्न नहीं हैं किन्तु शैली और प्रस्तुतिकरण में भिन्न हैं। वे एक साहित्यिक शैली अपनाकर विचार, अवधारणाएं एवं उनकी परिभाषाएं इतने काव्यात्मक लालित्य के साथ प्रस्तुत करते हैं कि कई बार वे मौलिक प्रतीत होते हैं। हमारे लिए लाभप्रद यह है कि उन्होंने कौटिल्य और अन्य प्राचीन लेखकों को गद्यांशों के माध्यम से वर्णित करने का प्रयास किया है। इन गद्यांशों के स्रोतों के बारे में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। आश्चर्यजनक रूप से ये गद्यांश, जिनका अधिकतर श्रेय कौटिल्य को जाता है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समान शासन–कला के वर्णन से संबंधित न होकर राजनीतिक व्यवहार के साधारण नियमों अथवा उनसे संबंधित कुछ ज्ञान–मीमांसीय प्रश्नों से संबंधित हैं। उनके प्रस्तुतिकरण के संदर्भ में, हमारे कौटिल्य के आकलन में भी कुछ परिवर्तन आना चाहिए।

सोमदेव इस दृढ़ विश्वास के साथ आगे बढ़े कि राजनीतिक विचारों का जीवन की बड़ी समस्याओं पर प्रत्यक्ष प्रभाव होना चाहिए एवं जीवन का सामना अर्थशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के सैद्धांतिक प्रतिपादनों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। सोमदेव के अनुसार सिद्धांत एवं व्यवहार को पृथक् नहीं किया जा सकता, व्यवहार के बिना कोई सामान्य सिद्धांत संभव नहीं है एवं सामान्य सिद्धांत बिना कोई व्यवहार सफल नहीं हो सकता। एक ओर वे यह तर्क देते हैं कि राजनीति के विज्ञान का ज्ञान उस मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं है जो राजनीतिक कर्म को नहीं समझ सकता, दूसरी ओर वे इस बात से सहमत हैं कि आध्यात्मिक एवं राजनीति विज्ञान के ज्ञान

* सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), श्रीमती गोमती देवी पी.जी. महाविद्यालय, बड़ागॉव, झुन्झुनू, राजस्थान।

के बिना एक बुद्धिमान व्यक्ति को भी शत्रु परास्त कर देते हैं।[3] एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं विज्ञानों का ज्ञान मनुष्य की तीसरी आंख है, जो उन वस्तुओं को भी देख सकती है जो इंद्रियों से परे हैं।[4] वे आगे कहते हैं, ''वह व्यक्ति जिसने विज्ञानों का अध्ययन नहीं किया है, वह वास्तव में आंखें होते हुए भी अंधा है।''[5] राजनीति विज्ञान सदैव राजनीतिक व्यवहार के लिए पथ–प्रदर्शक रहा है, एवं राजनीतिक जीवन के तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने राजनीतिक समझ को भी समृद्ध बनाया।

उनकी ज्ञान की परिभाषा के सिवाय कहीं और यह उपागम अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुआ है। वे कहते हैं, वह ज्ञान कहा जाता है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य लाभकारी चीजों को स्वीकार करता है एवं हानिकारक चीजों को नकार देता है।[6]

ज्ञान मनुष्य को बुद्धि, तर्क एवं उचित और अनुचित कार्यों में भेद करने की समझ देता है, उसे शक्ति के अहंकार से बचाता है एवं उसे सफलता, समृद्धि एवं सिद्धि तथा चिन्तन एवं कर्म में दक्षता प्राप्त करने योग्य बनाता है।[7] वह जातियों के कर्त्तव्यों एवं प्रथाओं से परिचित हो जाता है एवं सही और गलत का ज्ञान प्राप्त करता है।[8] उस व्यक्ति के लिए कोई कार्य बहुत छोटा या बड़ा नहीं होता जो उसे करने के तरीके एवं माध्यम जानता है। सफलता संभव है यदि प्रथम, हम संशय का त्याग करें एवं द्वितीय, सकारात्मक तर्कशक्ति का उपयोग करें जिसका अर्थ है आधार के रूप में ज्ञात वस्तुओं का ज्ञान के संदर्भ में ज्ञान।"[9] किन्तु उनके प्रत्यक्षवाद और आधुनिक प्रत्यक्षवाद में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि वे कभी भी सही एवं गलत के प्रश्न की उपेक्षा नहीं करते; उचित एवं सर्वोत्तम राजनीतिक व्यवस्था के प्रश्न उनके चिन्तन के केन्द्र हैं। इसी कारण वे राजनीति को ज्ञान के अन्य रूपों से भिन्न नहीं मानते। उनका विश्वास है कि तर्क विज्ञान पराभौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान से, अर्थशास्त्र कृषि एवं वाणिज्य प्रबंधन तथा अन्य इसी प्रकार के कार्यों से एवं राजनीति का विज्ञान अच्छे लोगों की रक्षा एवं बुरे लोगों पर नियंत्रण से संबंधित है। उनकी पुस्तक में श्रेष्ठतम राजनीतिक व्यवस्था के आदर्शों के बारे में विचारों को वास्तविक रूप से विद्यमान आदर्शों से संबंधित करने का सचेतन प्रयास किया गया है क्योंकि वे इस बात से सहमत हैं कि विवेक एवं औचित्य के अभाव से बड़ा मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है।[11] अपने व्यवहार को औचित्य के किसी सिद्धांत से संबंधित करने के अपने सरोकार के कारण ही उन्होंने सांसारिक सुखों की पूर्णता का समर्थन करने वाले चार्वाक एवं लोकायत दर्शन को सीमित सिद्धांत बताकर उनकी आलोचना की। वे इस बात से सहमत हैं कि इन सिद्धांतों का पालन करके हम अपराध को तार्किक रूप से राज्य से बाहर नहीं निकाल सकते।[12]

इस प्रकार, सोमदेव द्वारा प्रस्तुत किए गए महत्त्वपूर्ण मुद्दे अमूर्त स्तर पर राजनीतिक दर्शन के प्रश्न न होकर वे मुद्दे हैं जिनसे राज्य में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जूझता है। ये प्रश्न आपस में संबंधित हैं तथा इनमें प्राथमिक एवं द्वितीयक श्रेणी के मुद्दे भी होते हैं। कतिपय मुद्दे चेतना की प्रकृति एवं उसके परम ब्रह्म से संबंध के बारे में हैं, अथवा उचित व्यवस्था की परिभाषा से संबंधित मूलभूत प्रश्न हैं जो कि राजनीतिक कार्यवाही के संदर्भ में भूमिका प्रदान करते हैं। वे भारत में प्रभुत्वशाली धार्मिक चिन्तन की इस मूलभूत अभिधारणा को स्वीकार करते हैं कि मानवीय ''स्व'' सर्वोच्च ''स्व'' का ही प्रतिबिंब है।[13] यह माया के परदे में है एवं इसकी मुक्ति पुनः सर्वोच्च 'स्व' से संबंध स्थापित करने में है। यह प्रश्न उनके लिए अधिक रूचिकर नहीं है। संपूर्ण विचार–विमर्श कुछ ही पद्यांशों में समाप्त हो जाता है। उचित कर्म का प्रश्न अधिक रूचिकर है एवं शेष पुस्तक इस पर चर्चा के लिए समर्पित है।[14]

धर्म की आवश्यकता का उदय इस तथ्य से होता है कि राजनीतिक जीवन विशेषतः एवं मानव जीवन साधारणतः अच्छाई एवं बुराई तथा प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता के बीच के तनाव से ग्रस्त रहते हैं। एक ओर, प्रत्येक व्यक्ति एक स्वायत्त जीव है जो अपने स्वयं के सुखों की खोज करता है, तो दूसरी ओर वह अपने जैसे व्यक्तियों द्वारा निर्मित समाज का अंग है, जो कई बार उसकी अधिक सुख की कामना में अवरोध उत्पन्न कर देता है। सुख का अर्थ है इंद्रियों की तृप्ति एवं मानसिक संतुष्टि।[15] प्रत्येक व्यक्ति अपनी इंद्रियों की तृप्ति के संदर्भ सुख की खोज करता है। इंद्रियों की तृप्ति प्रसन्नतादायक होती है एवं उसकी अनुपस्थिति अप्रसन्नतादायक[16] यह उस

व्यवहार पर आधारित है जो व्यक्ति को सम्मान एवं प्रसिद्धि की ओर ले जाता है। व्यवहार वह कठोर श्रम है जिसका परिणाम परिणामों की उपलब्धि है। यह कई बार गौरव की ओर ले जाता है। गौरव समृद्धि एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि से संबंधित भाव है जिसका परिणाम सम्मान एवं दूसरों के प्रति नम्र व्यवहार है।[17] सफलता कामनाओं एवं उनकी उपलब्धि के श्रेष्ठतम माध्यमों के बारे में गहन चिन्तन में सन्निहित है।[18] जल्दबाजी में एवं बिना उचित विचार के किए गए कार्य दुर्भाग्य को जन्म देते हैं। चिन्तन का परिणाम निष्कर्ष है। यह समस्त कार्यों में से किसी एक अपूर्ण कार्य का निर्णय है।[19] स्वयं का कल्याण सद्गुण है एवं जो मनुष्य को इससे दूर ले जाए वह अवगुण है।[20]

इस प्रकार, सद्गुणों और दुर्गुणों को अधिकतर व्यक्ति के हितों से संबंधित माना जाता है। सुखों की आकांक्षा करने वाले व्यक्तियों का जो चित्र यहां प्रस्तुत किया गया है, वह हॉब्स के समान ही है। किन्तु हॉब्स के विपरीत, सोमदेव का व्यक्ति स्वायत्त होने के उपरांत भी अन्य व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों जैसे परिवार व राज्य से संबंधित है। उनका दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति का कोई ऐसा कार्य जो दूसरे व्यक्ति के प्रति द्वेषपूर्ण हो, उसका कल्याण नहीं कर सकता।[21] अपनी परंपराओं के साथ परिवार की अवधारणा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार, जो व्यक्ति शास्त्रों के अनुसार अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करता है एवं विशेष अवसरों पर सदाचारपूर्वक उनका क्रियान्वयन करता है, वह एक गृहस्थ है। इन कर्त्तव्यों में ईश्वर के लिए बलिदान, माता–पिता की सेवा, अतिथियों का सत्कार एवं दुर्बलों की रक्षा शामिल है।[22] सभी व्यक्तियों को इसमें सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है कि जीवन लेने एवं देने के सिद्धांत पर आधारित हो।[23] यहाँ सोमदेव अहिंसा के सिद्धांत को पवित्र बताते हुए कहते हैं कि इसका पालन करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में जाता है। हम उनके विचारों में उपयोगितावाद का महत्त्वपूर्ण पुट देखते हैं। अहिंसा की प्रशंसा इसलिए नहीं की गई है कि यह कोई पारलौकिक सिद्धांत है बल्कि इसलिए की गई है क्योंकि इसका पालन पारस्परिक सम्मान को बढ़ाता है एवं समाज को सुचारु रूप से चलाने योग्य बनाता है।[24]

अन्य तीन महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ जनपद (जिला), राज्य एवं देश हैं। देश भूमि का वह भाग है जहाँ पशु, अनाज एवं धातुओं का धन चमकता है।[25] वह क्षेत्र जो बढ़ते हुए आधिपत्य के प्रति समर्पित होता है, जिस पर शासन किया जाता है एवं जिसके पास अपना राजकोष होता है, वह राज्य है।[26] जनपद शब्द का उपयोग भी दूसरे अर्थ में किया गया है। यह वह क्षेत्र है जिसमें लोग जातिगत दायित्वों से बंधे होते हैं एवं अपने जीवन को धन प्राप्ति एवं वस्तुओं के उत्पादन हेतु मानव जीवन के चार चरणों के सिद्धांत के अनुसार संचालित करना चाहते हैं।[27] अंग्रेज़ी में इसका निकटस्थ समानार्थी शब्द शायद सिविल सोसायटी (नागरिक समाज) होगा। यह आश्चर्यजनक है कि उनकी राज्य एवं नागरिक समाज की परिभाषाएं बिल्कुल स्पष्ट हैं जबकि देश की परिभाषा में ऐसी स्पष्टता नहीं है। उनकी परिभाषा हमें एक देश की दूसरे देश से भिन्नता बताने में सक्षम नहीं बनाती। फिर भी सोमदेव इस तथ्य से भली–भांति परिचित थे कि विभिन्न देश विभिन्न घटकों द्वारा एक–दूसरे से पृथक् हैं। यहाँ यह जोड़ा जाना चाहिए कि ये चारों इकाइयां स्वायत्त इकाइयां मानी गई हैं जिनकी विशिष्ट पहचान एवं चारित्रिक गुण हैं एवं इसके उपरांत भी वे वृहद् इकाई के अंश हैं। प्रत्येक परिवार एवं देश की पृथक् पहचान एवं परंपराएं हैं जिनका उन्हें पालन करना चाहिए।

सोमदेव पूर्णतः स्पष्ट हैं कि यदि प्रसिद्धि परिजनों एवं आश्रितों को सहारा नहीं देती अथवा समाज में दुराचार रोकने में सहायता नहीं देती, तो वह व्यर्थ है। जीवन के सामंजस्यपूर्ण निर्वाह पर स्पष्ट रूप से बल दिया गया है ताकि प्रत्येक इकाई अपनी विशेष पहचान के संदर्भ में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। यहाँ धर्म उचित व्यवहार का सिद्धांत है, जो सांसारिक सफलता एवं परालौकिक आनंद की ओर ले जाता है।[28] इसके विपरीत सब दुराचरण है। इस बिंदु पर पारंपरिक चिन्तन बताता है कि सांसारिक समृद्धि एवं समस्त सांसारिक इच्छाओं के अनुसरण जैसी गतिविधियां आनंद के लिए आवश्यक हैं,[29] वे समान बलपूर्वक यह भी कहते हैं कि जिस धन में शरणार्थियों एवं आश्रितों का भाग नहीं हो, वे धन किसी का नहीं हो सकता।[30] एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं, लालची व्यक्ति के लिए उसके स्वयं के धन के सापेक्ष कोई समृद्धि नहीं है।[31] समृद्धि के योग्य वही है

जो उचित माध्यमों एवं परंपरानुसार उसका आनंद लेता है।[32] वे उन व्यक्तियों की प्रशंसा करते हैं जो धार्मिक एवं धर्म–निरपेक्ष कार्यों को करने में सहायक होते हैं, वे उन्हें वास्तविक तीर्थस्थान कहते हैं। वे इस बात से सहमत हैं कि अन्याय एवं दुराचार से उत्पन्न सुख दूसरे लोक में फल नहीं देता एवं इस लोक में अनंत पीड़ादायक सिद्ध होता है।[33] सदाचार का मार्ग अप्राप्य की प्राप्ति एवं प्राप्त के संरक्षण का माध्यम है।[34]

जैन धर्म पर अक्सर यह आक्षेप लगाया जाता है कि वह जीवन के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति का उपदेश देता है। यह तर्क दिया जाता है कि रहस्यवादी परंपरा विश्व की आवश्यक अवास्तविकता पर बल देती है, जो उसके अनुसार, एक बंदीगृह है जिससे स्वतंत्र होने के लिए हमें उससे बाहर आना होगा। किन्तु यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अपने पथ–प्रदर्शक कौटिल्य के समान सोमदेव में भी जीवन सकारात्मकता की अभिवृत्ति है, जिसमें किसी भी ऐसी गतिविधि अथवा अभिवृत्ति का उपदेश किसी अन्य को समाप्त करने के लिए नहीं दिया जाता। जो भी हो, इसी लोक में जीवन–प्रक्रिया की निरंतरता पर बल दिया गया है, और परिणामस्वरूप हमें अपने दायित्वों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। भारतीय चिंतन मानवीय गतिविधियों को चार समूहों में विभक्त करता है जो हैं – सुख का अनुसरण जिसका परिणाम है इंद्रियों की संतुष्टि, धन की प्राप्ति जिसका परिणाम है सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समृद्धि, सदाचरण का पालन एवं मुक्ति की खोज[35] सोमदेव के अनुसार व्यक्ति को इन सभी का एक साथ आनंद लेने का प्रयत्न करना चाहिए।[36] सोमदेव मोक्ष को राज्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं देते। वे अपना विचार–विमर्श अन्य तीन गतिविधियों तक ही सीमित रखते हैं। वास्तव में, आवश्यकताओं की पूर्ति के कार्य एवं समृद्धि के अनुसरण को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि वे कहते हैं कि जो व्यक्ति इस उद्देश्य की उपेक्षा करता है एवं मात्र सदाचार की शरण लेता है वह पकी फसल को छोड़कर बंजर भूमि को जोतता है।[37] वे सुख के बारे में भी समान अभिवृत्ति रखते हैं। वह इतना वास्तविक है कि उन्होंने स्वीकार किया है कि एक धनहीन व्यक्ति को उसकी पत्नी एवं बच्चे भी त्याग देते हैं। यद्यपि आध्यात्मिक उन्नति अभी भी अंतिम लक्ष्य है, किन्तु पुस्तक में इसका उल्लेख मुश्किल से ही कहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे विचार की अपेक्षा परंपरा का सम्मान करते हैं। हर स्थान पर विश्व का आनंद समृद्धि एवं विवेक, जिनके परिणामस्वरूप सर्वजन कल्याण संभव है, के साथ लेना चाहिए।

परन्तु वे उन सीमाओं को जानते थे जिनके परे इन सभी वस्तुओं का एक साथ आनंद नहीं लिया जा सकता। इसलिए प्लेटो के समान वे भी ''उचित'' को स्थापत्य संबंधी सिद्धांत के समान मानते थे, जिसमें जीवन की सभी दूसरी वस्तुओं की सीमाएं परिभाषित कर संतुलन स्थापित किया जाता है। चूंकि वे इस बात से सहमत हैं कि जीवन के तीन उद्देश्यों में से किसी एक उद्देश्य का शेष दो के मूल्य पर अत्यधिक अनुसरण करना मोक्ष प्राप्ति के लिए घातक है, वे कहते हैं कि, वह व्यक्ति जो इच्छापूर्ति का आनंद सदाचार एवं समृद्धि प्राप्ति के साथ लेता है, वह कभी भी प्रसन्नता से विमुख नहीं होता।[38] एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं जिस प्रकार सिंह हाथी को मारकर अपयश प्राप्त करता है, उसी प्रकार एक व्यक्ति जो सदाचार के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है वह पाप का भागी बनता है।[39] वे अनिच्छा से कठोरता को स्वीकार करते हैं क्योंकि वे महसूस करते हैं कि यह इंद्रियों एवं बुद्धि पर नियंत्रण ही है[40] जो समाज की परंपराओं का उचित आनंद लेने की ओर अग्रसर करता है।[41]

वास्तव में, वे समानता के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि सभी प्राणियों में समानता का भाव उत्पन्न करना समस्त प्रकार के व्यवहारों में सर्वोच्च व्यवहार है"।[42] किन्तु उनकी समानता की धारणा आधुनिक धारणा से भिन्न है। वे समानता को इस रूप में नहीं देखते कि सभी मनुष्य शारीरिक रूप से समान हैं। अथवा अवसरों में समान हैं किन्तु सर्वप्रथम वे मोक्ष की प्राप्ति की क्षमता के संदर्भ में समान हैं एवं दूसरा, समाज के प्रति दायित्वों में समान हैं, जिसमें उनके कर्त्तव्यों का निर्वहन सम्मिलित है। वास्तव में उनकी समानुपातिक समानता की आध्यात्मिक अवधारणा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, यहाँ तक की समस्त व्यक्ति समान हैं क्योंकि वे ईश्वर द्वारा निर्मित प्राणी हैं एवं उनमें एक दिव्य चेतना है अपनी आवश्यकताओं में वे भिन्न अवश्य हैं किन्तु उन सबमें मुक्ति पाने की समान क्षमता है। वे वास्तव में उसका उपयोग करते हैं या नहीं अथवा उन्हें आवश्यक अवसर

उपलब्ध हैं या नहीं यह एक अन्य प्रश्न है। इस समान चारित्रिक गुण के कारण ही समस्त लोग सहानुभूति एवं सद्–इच्छा प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं, उन्हें एक–दूसरे के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए। जो भी जानबूझकर एवं संकीर्ण स्वार्थ के कारण दूसरों का बलिदान देते हैं अथवा उनके विरुद्ध हिंसा करते हैं, वे उचित नहीं ठहराए जा सकते।

समस्त व्यक्तियों के कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा अतिक्रमण से संरक्षण के लिए मध्यस्थता, निर्णय एवं औचित्यपूर्ण शक्ति की आवश्यकता होती है। इससे राज्य का उदय होता है जिसका भूमि के एक भाग पर अधिकार होता है एवं जिसके पास अन्य चारित्रिक विशेषताएं जैसे प्रजा, राजा, मंत्रिपरिषद्, किला, सेना, मैत्रीपूर्ण पड़ोसी एवं राजकोष होते हैं।[43] राज्य का सर्वोच्च गुण अपने निवासियों की सुरक्षा करने की क्षमता है। राजा को इस योग्य होना चाहिए कि वह राजनीतिक एवं आर्थिक विज्ञानों के उचित उपयोग द्वारा शांतिपूर्ण मानव जीवन की संभावनाओं में वृद्धि कर सके। उसका कर्त्तव्य है कि वह कानून एवं व्यवस्था सुनिश्चित करे समझाइश, धमकी, जोर–जबरदस्ती एवं यहाँ तक कि बल प्रयोग द्वारा व्यवस्था की पुनर्स्थापना करे।[44] ऐसा करने योग्य होने के लिए यह आवश्यक है कि राजा बिना किसी पक्षपात के न्याय करे।[45] उसे जाति प्रथा जारी रखनी चाहिए एवं उत्पादन संबंधी उपकरण, कृषि, उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य को नियंत्रित करना चाहिए, जो उनके अनुसार, अन्य समस्त गतिविधियों के आधार हैं।[46] राजा योग्य लोगों का रक्षक एवं कर्त्तव्य पालन नहीं करने वालों को दण्ड देने वाला होता है।[47]

राज्य का प्रबंधन एक कला है। इसमें कुछ कौशल की आवश्यकता होती है। जिसमें राजा और उसके अधीनस्थ मंत्री एवं लोक–सेवक विवेक और बुद्धि के साथ प्रशिक्षित होने चाहिए; उन्हें कठोर परिस्थितियों से निपटने के लिए आवश्यक विवेक एवं औचित्य में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए। सोमदेव शिक्षा को गौरवपूर्ण स्थान देते हैं और तर्क देते हैं कि परिवार एवं सांसारिक औचित्य के लिए राजाओं की उचित शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के अभाव में राजपरिवार शीघ्र खंडित हो जाता है।[48] अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र में प्रशिक्षित व्यक्ति राज्य के प्रबंध के लिए राजा का मार्गदर्शन कर सकता है।[49] सामान्य सिद्धांतों के द्वारा वे जीवन का सही परिप्रेक्ष्य एवं विभिन्न परिस्थितियों में उसकी समस्याएं स्पष्ट कर देते हैं। वे कौटिल्य की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि कौटिल्य ने अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार उचित सलाह दी एवं सर्वजन कल्याण के लिए चंद्रगुप्त को उसका साम्राज्य स्थापित करने योग्य बनाया।[50]

अन्य लोगों द्वारा प्रतिपादित औचित्य व सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांतों को स्वीकार करते समय राजनीतिक सिद्धांतवादी अपना ध्यान राजनीतिक जीवन के संगठन पर केंद्रित करते हैं। वे इस बात से सहमत हैं कि विचारों का व्यवहार में परिवर्तन एक तकनीकी समस्या है। इसलिए राजा को कोई भी नई परियोजना प्रारंभ करने से पूर्व विभिन्न योजनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। शत्रुओं के संदर्भ में, उसे उनकी शक्ति का मूल्यांकन करना चाहिए एवं यदि वह स्वयं को शक्तिहीन पाता है तो उसे शत्रु द्वारा कहे गए अवांछनीय शब्दों को भी सहन करना चाहिए।[51] उसे गुप्तचरों की एक विस्तृत प्रणाली रखनी चाहिए जिन्हें अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए विष एवं कामुक आकर्षण का उपयोग करने जैसे घृणित कार्य करने की भी अनुमति होनी चाहिए[52] राजा के लिए आत्मसम्मान के लिए मर जाना शत्रु के बंधन में स्वयं को समर्पित करने से अधिक श्रेयस्कर है,[53] यदि लंबे समय के दृष्टिकोण से लाभप्रद लगे तो उसे शत्रु की शरण लेने की अनुमति भी है।[54] एक अन्य स्थान पर वे आंख के बदले आंख के सिद्धांत का उपदेश देते हैं और कहते हैं, जो व्यक्ति अपने प्रति किए गए व्यवहार का पुनर्भुगतान नहीं करता, उसे न तो इस लोक में और न ही परलोक में कोई फल मिलता है।[55]

सोमदेव राजनीति को आवश्यक रूप से समाज में विवाद का प्रबंधन करने का कौशल मानते हैं।[56] यहां स्थायी उपाय जैसे पक्षपात रहित न्याय एवं समानुपातिक दण्ड,[57] राज्य की समृद्धि को बढ़ाना,[58] गरीबों एवं दुर्बलों की रक्षा[59] के साथ गुप्तचरों का उपयोग जैसे अस्थायी उपाय भी हैं। अपने मंत्रियों से विचार–विमर्श के बाद यदि राजा इस बात से सहमत है कि कोई रणनीति राज्य को दीर्घकाल में कल्याण की ओर ले जाएगी, तो उसे ऐसी किसी भी रणनीति का उपयोग करने की अनुमति है। माध्यम के मुद्दे पर मैकियावेली ने भी समान तरीका ही

अपनाया था । किन्तु सोमदेव व मैकियावेली के दृष्टिकोण में एक मूलभूत अंतर है। मैकियावेली मात्र जीवित रहने की स्थितियों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं जबकि सोमदेव अच्छे और अनुकरणीय जीवन की स्थितियों पर भी ध्यान देते हैं। वे नैतिक और व्यावहारिक दोनों आवश्यकताओं को संबद्ध करना चाहते हैं। वे औचित्य को राजनीति का आधार स्वीकार करते हैं एवं इसे प्रत्येक स्थान पर त्रुटिपूर्ण मानव स्वभाव से जोड़ते हैं। सद्गुण के संदर्भ में मैकियावेली भी यही करते हैं। दोनों दक्षता प्राप्त करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं किन्तु वे इस बात को भी जानते हैं कि यह हमेशा संभव नहीं है; सोमदेव स्वीकार करते हैं कि तपस्वियों के कार्य भी दाग से पूर्णतः मुक्त नहीं होते।[60] किन्तु मैकियावेली का सरोकार है कि मानव स्वभाव पर राजा के हित में किस प्रकार विजय प्राप्त की जाए जबकि सोमदेव का सरोकार है कि इस पर विजय प्राप्त करना इसे उचित व्यवस्था के साथ लाने के लिए आवश्यक है। मात्र जीवित रहने से परे, उनके विचार सर्वजन हित के लिए जीवन के संस्थानीकरण से संबद्ध हैं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अस्तित्व के ऊँचे स्तर तक उन्नति कर आध्यात्मिक उद्धार प्राप्त कर सके। इसलिए वे कभी राजा की शक्तियों को निरपेक्ष नहीं मानते, वे कहते हैं। वह अकेला ही स्वामी है जो अन्य कई में स्वीकार्यता को प्रेरित करता है।[61] राजा सर्वाधिक अनुकूल तरीका चुनने के लिए अथवा शांति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु वह जो कुछ भी करता है, उसमें उसे वांछनीय एवं परिस्थितियों में संभव के बीच की खाई को विचारों को विशिष्ट स्थितियों में उचित विशिष्ट कानूनों एवं प्रयासों के संदर्भ में जीवन की वास्तविक स्थितियों से संबद्ध कर पाटने का प्रयास करना चाहिए। राजा को यह प्रश्न पूछना चाहिए कि : औचित्य पर आधारित स्थितियों का निर्माण करने के लिए राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन को किस प्रकार सर्वोत्तम रीति से संगठित करना चाहिए? आदर्शात्मक राजनीति विज्ञान को प्रत्यक्षवादी समझ के बिना व्यवहार में नहीं लाया जा सकता; पहले की अनुपस्थिति में दूसरे को जनहित प्राप्त करने का माध्यम नहीं बनाया जा सकता; नैतिक विज्ञान, शरीर विज्ञान, रोग विज्ञान एवं चिकित्साशास्त्र सभी का उपयोग एक अच्छी राज व्यवस्था निर्मित करने में होता है।

सोमदेव ने कल्याणकारी राज्य की कल्पना की। व्यवस्था का पालन जीवन का संरक्षण संभव बनाता है तथा अन्य पक्षों का संगठन समृद्धि को बढ़ाकर राज्य को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करता है। इस प्रकार मैकियावेली में कई बार सद्गुण बर्बरता की ओर ले जाते हैं जबकि सोमदेव के प्रकरण में जहाँ तक वे इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के लिए स्वीकार्य होना चाहिए, वे एक सुखद स्वरूप प्राप्त करते हैं। इसके अलावा राजनीतिक कार्य जातीय दायित्वों, जीवन के विभिन्न चरणों के कर्त्तव्यों एवं शास्त्रों के नियमों द्वारा अभिव्यक्त परंपराओं तथा नैतिक बंधनों के मूल में होने चाहिए। ये तीनों मिलकर एक ढ़ांचा प्रदान करते हैं जिसके अंतर्गत राजा बदलती परिस्थितियों का उचित प्रबंधन करता है। राजा को स्वहित में कार्य करने का अधिकार है, उसकी उपलब्धियों का मूल्य एवं लोगों की दृष्टि में उनका औचित्य अधिकांशतः एवं अंततः उसके द्वारा शासित लोगों के कल्याण पर निर्भर करता है। सोमदेव बलपूर्वक कहते हैं, अर्जुन वृक्ष की समृद्धि का क्या उपयोग है यदि कोई उसका उपयोग न कर सके?[62] यहाँ यह तथ्य आवश्यक रूप से जोड़ा जाना चाहिए कि कल्याण की परिभाषा राजा स्वयं अपनी इच्छानुसार तय नहीं कर सकता। यह विवेक एवं तर्क पर आधारित भाष्यात्मक व्याख्या के प्रकाश में समाज की नैतिकता के परिरक्षकों द्वारा तय की जानी चाहिए। राजनीतिक कौशल एक नियंत्रक कौशल है जो राज्य के अंदर और राज्य के बाहर अन्य राज्यों के साथ जीवन को नियंत्रित करता है। जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है, सोमदेव कभी भी शासक को निरपेक्ष नहीं मानते। उनके द्वारा शक्तियों के प्रयोग पर कड़ा बंधन होता है। राजा को उचित व्यवहार के सिद्धांत की अच्छी पकड़ होनी चाहिए, उसके पास अपनी प्रजा की रक्षा करने के लिए साहस एवं पराक्रम होना चाहिए एवं उसे राज्य में समृद्धि प्राप्ति के माध्यमों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

सोमदेव का शासक संवैधानिक शासक के अधिक निकट है एवं विशिष्ट तानाशाह से दूर राजा के पास उसे सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् होनी चाहिए, अधितकतर प्रकरणों में इस प्रकार प्राप्त सलाह राजा के लिए बाध्यकारी होनी चाहिए।[63] संविधान मिश्रित प्रकार का होना चाहिए व मंत्रियों एवं न्यायाधीशों को औचित्य के सामाजिक रूप से स्वीकार्य सिद्धांतों के प्रकाश में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन, राजा के कहे पर ध्यान दिए बिना,

करना चाहिए।[64] पुस्तक के अध्याय दस में मूल विचार यह है कि राज्य का श्रेष्ठतम संगठन वह है जिसमें श्रेष्ठतम उपलब्ध प्रतिभा का चयन हो। राजा को अपनी प्रजा एवं उसके तौर–तरीकों के संपर्क में रहना चाहिए। सोमदेव यहां तक कहते हैं कि राजा को स्वयं अपनी प्रजा के मामलों का निपटारा करना चाहिए। अच्छा राजा वही है जो जनहित को स्वहित के ऊपर रखता हो एवं इस बात का निष्ठापूर्वक प्रयास करता हो कि उसकी भावनाएं राज्य के विवेक पर हावी न हों। वह विशिष्ट मानवीय परिस्थितियों में औचित्य का ज्ञान प्राप्त करता है एवं उसमें यह क्षमता होती है कि वह उचित कठोरता के साथ अपने निर्णयों को लागू कर सके।[65] यह स्पष्ट है कि संदेहास्पद चरित्र वाले शासक इस प्रकार हित–पूर्ति नहीं कर सकते क्योंकि, अच्छे चरित्र एवं व्यवहार वाला व्यक्ति वस्त्रहीन होने पर भी नग्न नहीं होता।[66]

वास्तव में, सोमदेव कौटिल्य से भी परे जाते हैं, वे ''शांतिपर्व'' में भीष्म से अपनी प्रजा की रक्षा न कर पाने वाले राजा को हटाने से सहमत हैं। कौटिल्य स्वयं भी ऐसे राजा को पसंद नहीं करते किन्तु उनका मत था कि राजाविहीन होने से श्रेष्ठ है बुरा राजा होना, क्योंकि राजा की अनुपस्थिति से समाज में अराजकता फैल जाएगी। सोमदेव अराजकता की परिभाषा देते हुए कहते हैं, कि अराजकता समाज की वह अवस्था है जिसमें शक्तिशाली लोग दुर्बल लोगों को निगल जाते हैं,[67] तथा वे कहते हैं कि विश्व में मूर्ख राजा होने से श्रेष्ठ है कि कोई राजा ही न हो।[68] वे चिंतन करते हैं कि बुरे स्वभाव वाले राजा द्वारा प्रजा के विनाश से बड़ी कोई विपत्ति नहीं है।[69] वे विद्वानों से राजा के गुणहीन अथवा अत्यधिक अहंकारी एवं निरर्थक होने की दशा में सत्य बोलने को कहते हैं।[70] प्राचीन लोग अराजकता से घृणा करते थे एवं इस बात से भयग्रस्त रहते थे कि राजा का दुराचारपूर्ण व्यवहार अन्य लोगों को भी वैसा ही व्यवहार करने के लिए प्रेरित कर सकता है।[71] इस अर्थ में राजा राज्य का प्रथम एवं सर्वोच्च तत्त्व है।[72] फिर भी वह परंपराओं एवं विद्वानों के अधीन होता है जो उचित सलाह एवं बलिदान करने के लिए परंपराओं की व्याख्या करते हैं एवं वरिष्ठजनों तथा ब्राह्मणों द्वारा परिभाषित औचित्य के सिद्धांत, जिनको प्रचलन में रखने के लिए राजनीतिक शक्ति का अस्तित्व होता है, से परिचित कराते हैं। विद्वानों एवं साहसी तथा पराक्रमी व्यक्तियों दोनों का यह संयोजन व्यवस्था एवं न्याय को सुनिश्चित कर सकता है इसलिए इन्हें मिल–जुलकर कार्य करना चाहिए।[73]

शासन–कला के इस विचार–विमर्श में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान स्वाभाविक रूप से औचित्य के सिद्धांतों का है क्योंकि वे जीवन के समग्र विकास एवं उसकी भिन्न गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं। इसे प्राप्त करने के लिए साधनों एवं लक्ष्यों में उचित संबंध होना चाहिए। राजा के पास उचित को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक विवेक होना चाहिए। किन्तु सोमदेव शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए प्रभावी उपाय बताने में विफल रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी स्थिति के अपरिहार्य परिणामस्वरूप वे कमियों से भली–भांति परिचित नहीं थे। उनके लिए राजा का अभिप्राय अधिक महत्त्वपूर्ण है, यदि राजा श्रेष्ठ व्यवस्था का निर्माण करना चाहता है, तो वह अपने समाज का नेतृत्व करने वाला माना जाता है। किन्तु कदाचित् यह बात उनके मस्तिष्क में नहीं आई कि कई बार श्रेष्ठ अभिप्रायों से प्रारंभ की गई परियोजनाओं के परिणाम भी अत्यंत घातक होते हैं। इसलिए लोगों ने हमेशा सुरक्षा के उपायों की आवश्यकता अनुभव की ताकि तत्त्वों के परिवर्तन की क्रिया को विमंदित किया जा सके। सोमदेव ने मंत्रिपरिषद् की संस्था का प्रावधान किया किन्तु इस बात में वे पर्याप्त रूप से सफल नहीं हो सके कि यह परिषद् किस प्रकार एक हठी राजा को उचित कार्य करने के लिए बाध्य कर सकती है, विशेषकर तब, जब वह अपने संकीर्ण हितों का अनुसरण करने का निश्चय कर चुका हो। इस प्रकार की प्रणाली तभी कार्य कर सकती है जब शासक जागृत् हो एवं जनमत की शक्ति प्रबल हो, किन्तु भ्रष्ट एवं निरर्थक शासक होने की स्थिति में उसके द्वारा सुझाए गए सुरक्षा के उपाय अत्यंत दुर्बल हैं। इसी कारण उनके समान चिंतक मध्यकाल में, जिसमें अपने शासकों के संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए कई छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ, अप्रासंगिक हो गए। जहाँ तक वे औचित्य के सिद्धांतों, जो राज्य के उपकरणों से स्वतंत्र रूप से निर्मित हैं, की श्रेष्ठता के संदर्भ में शासकों एवं शासितों के मध्य एक बंधन को स्वीकार करते हैं, उनका राजनीति एवं नैतिकता को एक समग्रता प्रदान करना अधिक वास्तविक एवं आश्वस्त करने वाला है अतः यहाँ सोमदेव का चिन्तन

अधिक विवेकपूर्ण माना जाता है। समस्त तत्कालीन चिन्तन में ऐसा बंधन अच्छे शासन का आधार माना जाता है। वास्तव में, गांधी के राम–राज्य का आदर्श इसी प्राचीन विश्वास का पुनः उद्भव है।

जब उनके द्वारा शासकों एवं शासितों के मध्य एक नैतिक बंधन की आवश्यकता की स्वीकारोक्ति इतने स्पष्ट रूप से की गई है, तो हमें औचित्य की परिभाषा एवं उसके एक ओर व्यक्ति से एवं दूसरी ओर समाज से संबंध पर एक व्यवस्थित विचार–विमर्श का अभाव आश्चर्यचकित कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कल्याणकारी राज्य के आदर्श को प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी प्रसन्नता का अनुसरण करने के औचित्य की धारणा से संबद्ध करने के कोई प्रयास नहीं किए गए। ये दोनों सदैव साथ नहीं चलते। इसका परिणाम यह है कि उनके दर्शन के एक अंश में व्यक्ति की प्रसन्नता निरपेक्ष प्रतीत होती है एवं दूसरे अंश में विभिन्न इकाइयां, जिनका व्यक्ति एक भाग है, अपनी भूमिका निभाती हैं। एक स्थान पर ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य अपनी जीव वैज्ञानिक एवं मनौवैज्ञानिक रचना के कारण प्रसन्नता का अनुसरण करता है। एक अन्य स्थान पर सोमदेव परिवार एवं राज्य के प्राकृतिक चरित्र, उनकी परंपराओं एवं अवयवी संयोजन के बारे में बात करते हैं। वे इन दोनों स्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने में असफल रहे हैं।

वे तार्किक विवेचना के दो स्वरूपों में से किसी एक को स्वीकार कर सकते थे। प्रथम, वे गौतम के समान मिश्रण एवं उसके अंश के बीच के जटिल संबंध के विचार को स्वीकार कर सकते थे, यह ऐसा संबंध है जिसमें मिश्रण एक स्वतंत्र इकाई प्रतीत होता है, अंशों के भी अपने मिश्रण के आधार के घटकों के रूप में अपने अलग स्वरूप और महत्त्व हो सकते हैं। गौतम ने मिश्रण को ''आधेय'' एवं अंश को आधार माना। इस स्थिति को स्वीकार करने पर गौतम व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अपने सरोकारों में सामंजस्य स्थापित कर सकते थे। तब वे यह तर्क दे सकते थे कि मानवीय समुदायों का अपना चरित्र एवं पहचान होती है, वे विशेषकर दूसरे समुदायों से एवं सामान्यतः समाज से समग्र रूप से संबद्ध होते हैं।

वैकल्पिक तौर पर वे अपने विचारों को क्रमिक विकास के सिद्धांत से जोड़ सकते थे, जो मानता है कि सामाजिक विकास के क्रम में किस प्रकार मनुष्य का सुखवाद विभिन्न चरणों में संशोधित होता जाता है। वास्तव में इस तर्क में स्पष्ट रूप से जोड़ने वाली कड़ियां हैं परन्तु उनके संबंधों की स्पष्ट प्रकृति पर विस्तृत चर्चा की अनुपस्थिति में वे अत्यंत दुर्बल प्रतीत होती हैं। ऐसा विचार–विमर्श आवश्यक था क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में, प्राचीन सभ्यता के क्षरण के साथ, निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र इस सीमा तक अलग हो गए कि एक सामान्य भारतीय अपने निजी जीवन में अत्यंत पवित्र होता है जबकि सार्वजनिक जीवन में वह अत्यंत भ्रष्ट हो सकता है। इस प्रकार के विचार–विमर्श की अनुपस्थिति परेशानी उत्पन्न करती है क्योंकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र को छोड़कर कहीं भी मनुष्य की बुराइयों पर इस पुस्तक से अधिक अच्छी तरह चर्चा नहीं की गई है एवं कहीं भी इस प्रकार की बुराइयों, जैसे रिश्वतखोरी एवं सार्वजनिक भ्रष्टाचार के अन्य रूपों से निपटने के उपायों पर लंबी एवं विस्तृत चर्चा इतने लालित्यपूर्ण ढंग से एवं नैतिक रूझान के साथ नहीं की गई है। यह बड़े खेद की बात है कि चिन्तन की अन्य किसी प्रणाली में राजनीतिक जीवन के गहन प्रश्नों को इस सीमा तक व्यावहारिक नहीं बनाया गया है। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो उनकी नीति के विवेचन में जो अस्पष्टताएं हैं उनसे बचा जा सकता था एवं हम विवेक एवं औचित्य पर उनके बल को समझने में अधिक सक्षम हो सकते थे।

सामुदायिक संबंधों की प्रकृति पर इस जटिल स्थिति के लिए किसी समर्थक सिद्धांत के अभाव में उनके द्वारा पोषित नैतिक सिद्धांत सर्वप्रथम हताहत हुए; समय के साथ–साथ राजनीति ने अपनी नैतिक भाव–प्रवणता खो दी एवं कालांतर में यह विशुद्ध रूप से एक तकनीकी गतिविधि बन गई जिसमें राजा क्रूरतापूर्वक सत्ता में बने रहने का प्रयत्न करने लगे एवं अपने इस कार्य को धर्म के नाम पर उचित ठहराने लगे। राजनीति के वृहत्तर सिद्धांत बाहर फेंक दिए गए। कौटिल्य और सोमदेव के ग्रंथ शासन कला के ग्रंथ माने जाने लगे जो राजा को अपने आस–पास के मनुष्यों एवं वस्तुओं में शत्रु भाव की विशिष्ट स्थिति में सलाह देने लगे कि वह अपना वर्चस्व किस प्रकार बनाए रखे। शासन करने की कला मात्र एक तकनीकी कौशल बनकर रह गई एवं मानवीय आवेगों को आत्म–श्लाघा की ओर ले जाना उसका एकमात्र लक्ष्य बन गया। दुष्टों पर नियंत्रण एवं अच्छे लोगों की

सुरक्षा करने वाले विज्ञान के स्थान पर राजनीति समाज में व्यक्तियों पर नियंत्रण के लिए युक्तियों का एक समूह बन गई। एक अर्थ में सोमदेव कुछ निराश करते हैं क्योंकि अधिकतर सिद्धांत जिन पर वे इतना ध्यान देते हैं, वे पूर्व में ही 'शांतिपर्व' एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र द्वारा स्थापित हो चुके थे। जिस चीज की आवश्यकता थी वह है संबद्ध अवधारणाओं एवं विचारों पर प्राचीन यूनानी चिंतक प्लेटो की तरह विस्तृत चर्चा की। भारतीय इतिहास में उपद्रव प्रारंभ होने के काल से संबद्ध होने के उपरान्त भी वे भूतकाल में जी रहे थे। वे कदाचित् कौटिल्य के समय से भारतीय समाज . में आ रहे विशाल परिवर्तनों से अनभिज्ञ थे। सोमदेव ने निःसंदेह लालित्यपूर्ण साहित्यिक शैली में लिखा है। किन्तु उनमें अपने समय की राजनीतिक प्रक्रिया का ज्ञान, बुद्धि एवं दूरदर्शिता का अभाव था जबकि कौटिल्य में ये गुण बहुतायत में थे। जिस तरह उन्होंने जाति–प्रथा के कर्त्तव्यों एवं उस समय की अन्य कई सड़ी–गली प्रथाओं को इस बात से बेखबर होकर स्वीकार किया कि ये उनके स्वयं के द्वारा प्रबल रूप से समर्थित समानता के विचार से संयोजित नहीं हो सकते, इससे मौलिकता का अभाव प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त, एक जैन साधु होने के उपरांत भी, उन्होंने यह भूलकर कि इनमें से कुछ मुद्दे उस समय के तनावों एवं विवादों के मूल में थे, उन्होंने उन्हें स्वीकार कर लिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता वी.आर., भारतीय राजनीतिक चिन्तन के आधार एक व्याख्या मनु से आज तक, मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, पृ. सं. 134
2. मेहता वी.आर., भारतीय राजनीतिक चिन्तन के आधार एक व्याख्या मनु से आज तक, मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, पृ. सं. 135
3. सोमदेव नीति व्याक्यामृतम, अनुवाद एस.के गुप्ता, जयपुर, प्राकृत भारती–1987, 5.27
4. वही, 5.28
5. वही, 5.29
6. वही, 5.48
7. वही, 5.50
8. वही, 5.51
9. वही, 10.150,5.44
10. वही, 5.54
11. वही, 10.45, 136
12. वही, 6.33, 34
13. वही, 11.44, 5.12
14. वही, 5.12
15. वही, 6.10
16. वही, 6.11
17. वही, 6.13
18. वही, 6.14
19. वही, 6.19
20. वही, 15.1
21. वही, 15.7

22. वही, 16.1
23. वही, 1.6
24. वही, 15.12, 13
25. वही, 1.7
26. वही, 1.41
27. वही, 19.1
28. वही, 19.2
29. वही, 19.5
30. वही, 1.2
31. वही, 15.2
32. वही, 1.6
33. वही, 2.4, 1.45, 46
34. वही, 2.2
35. वही, 2.5
36. वही, 29.14
37. वही, 3.4
38. वही, 33
39. वही,
40. वही, 1.48, 21.9, 10
41. वही, 1.46
42. वही, 1.24
43. वही, 1.26
44. वही, 1.5
45. वही, 5.52, 53
46. वही,
47. वही, 6.39, 43, शांतिपर्व 69.19, 59.13
48. वही, 8.2, 3.4
49. वही, 7.22
50. वही, 5.56, 59
51. वही, 5.56, 59
52. वही, 5.54, 55, 10.61
53. वही, 10.4
54. वही, 13.9, 10
55. वही, 14.4, 5, 8, 9, 10

56. वही, 29.53
57. वही, 29.54
58. वही, 26.13
59. वही, 28.4, 5
60. वही, 9.2
61. वही, 8.2
62. वही, 7.8
63. वही, 6.35
64. वही, 32.32, 5.33
65. वही, 32.33
66. वही, 10.58, 59
67. वही, 10.5, 69
68. वही, 19.33, 34
69. वही, 26.52
70. वही, 9.8
71. वही, 5.32 अर्थशास्त्र 1.3
72. वही, 5.33
73. वही, 5.68